International Journal of Enhanced Research in Management & Computer Applications
ISSN: 2319-7471, Vol. 4 Issue 10, October-2015

वैदिककालीन धर्म : एक अवलोकन

राजीव कुमार खत्री
U.G.C. - NET

शोधार्थी, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

वैदिककाल के संबंध में लिखित स्रोत ज्ञात है। परन्तु इस संबंध में पुरातात्विक साक्ष्य मौन हैं। वैदिक ध र्म का स्रोत वैदिक साहित्य है। वैदिक शब्द वेद विषयक बहुविधि ज्ञान –सामाग्रियों का द्योतक है। वेद विषयक सामाग्री में वेदों के अलावा ब्राह्मण, अरण्यक, उपनिषद और षड् –वेदांग हैं, जो वेदों से भिन्न होते हुए भी वेद पर आधारित तथा उनसे संबंध्ति हैं। वैदिक साहित्य में **ऋ**ग्वेद प्राचीनतम है। इसकी रचना ई॰ पू॰ 1500 के लगभग या उससे पहले हुई। **ऋ**ग्वेद में प्रथम तथा दसम् मंडल बहुत बाद के माने जाते हैं और इनमें बहुत–सी **ऋ**चाएँ मिलती हैं।[1] उत्तर वैदिक साहित्य में वैदिक)चाओं के साथ–साथ विध्–विधन पाए जाते हैं अथर्ववेद में जादू टोने पाए जाते हैं और बिमारियों से कैसे छुटकारा पाया जाए, इसके उपाय मिलते हैं। इसका समय 1000 ई॰ पू॰ के बाद रखा जाता है। विद्वानों के अनुसार इसमें अवैदिक संस्कृतियों के तत्वों की प्रधनता ह। यजुर्वेद का काल लगभग अथर्ववेद जैसा ही है और उसमें **ऋ**चाओं के अतिरिक्त अनेक विधि –विधन और अनुष्ठान है। इन विधि–विधनों और अनुष्ठानों की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों में की गयी है। जिनके नाम हैं – ऐतरेय ब्राह्मण, पंचविश ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण।[2]

चार वेद– **ऋग**, यजु, साम और अथर्व हैं। पहले तीन परस्पर एक समान हैं, न केवल अपने नाम, आकृति व भाषा में किन्तु अपने अन्तर्गत विषयों में भी। इनमें **ऋ**ग्वेद प्रधान है। सामवेद विशु(कर्मकांड–संबंधे संग्रह है। इसका बहुत सा भाग **ऋ**ग्वेद में पाया जाता है और वे सूक्त भी जो विशेषकर इनके अपने हैं, कोई विशेष नई शिक्षा नहीं देते। उन सबको क्रमबध किया गया है केवल यज्ञ में गानों के लिए। साम की भांति यजुर्वेद की उपयोगिता भी कर्मकांड के लिए है। कर्मकांडपरक ध्र्म की मांग को पूरा करने के लिए ही इस वेद का संग्रह किया गया।[3]

बिटनी लिखता है, ''प्रारंभिक वैदिक काल में यज्ञ अभी तक मुख्यतः बंध्न रहित भक्तिपरक कर्म था, जो किसी विशेषाधिकार प्राप्त पुरोहितवर्ग के सुपुर्द नहीं था, न उनके छोटे–छोटे ब्योरे के लिए कोई विशेष नियम बनाए गए थे, यज्ञकर्ता यजमान की ही स्वतंत्रा भावनाओं के ऊपर आश्रित होते थे और उनमें)ग्वेद तथा सामवेद के ही मंत्रों का उच्चारण रहता था जिससे कि यजमान का मुख, हाथों से देवताओं के निमित्त हृदय की भावना से प्रेरित होकर आहुति देते समय, बंद न रहे। ... ज्यों–ज्यों समय बीतता गया, कर्मकाण्ड ने भी आध्किारिक औपचारिक रूप धरण कर लिया और अन्त में एक सर्वथा निर्दिष्ट एवं सूक्ष्म रूप में यजमान के क्षण–क्षण के व्यापार को तारतम्य में नियंत्रित कर दिया गया। केवल इतना ही नहीं कि धर्मिक अनुष्ठान विशेष के लिए विशेष मंत्रा नियत कर दिए गए, अपितु उसी प्रकार से वैयक्तिक व्यापार को प्रकट करने वाले मंत्रा भी स्थिर कर दिये गए जो व्याख्या करने, क्षमा–प्रार्थना करने एवं आशीर्वाद देने में संकेत रूप से प्रयुक्त किये जाने लगे। इन यज्ञ संबंधे मंत्रों के संग्रह का नाम यजुर्वेद हुआ, जिसका 'यज्' धतु से 'यज्ञ करना' अर्थ होता है।[4]

प्रत्येक वेद के तीन भाग है, जिन्हें मंत्रासंहिता, ब्राह्मण और उपनिषद् नामों से जाना जाता है। मंत्रा अथवा)चाओं या सूक्तों का संग्रह को संहिता कहते हैं। ब्राह्मणों में उपदेश एवं धर्मिक कर्तव्यों का विधान है। उपनिषद् एवं आरण्यक ब्राह्मणों के अंतिम भाग हैं, जिसमें धर्मिक समस्यायों की विवेचना की गयी है। वैदिक सूक्त कवियों की कृतियाँ हैं, वहाँ ब्राह्मण–ग्रंथ पुरोहितों की रचनाएँ हैं ओर उपनिषद् दार्शनिकों के मनन एवं चिन्तन के परिणाम हैं। सूक्तों के स्वरूप का ध्र्म, एवं ब्राह्मण ग्रन्थों का नियमब(ध्र्म एवं उपनिषदों का भावनाम ध्र्म है।[5]

वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् के अलावा सूत्रा–साहित्य ;वेदांगद्ध भी वैदिक साहित्य में शामिल हैं। संक्षिप्त नियमों के रूप में पिरोए हुए शास्त्रीय अनुशासन के ग्रन्थ 'सुत्रा' कहलाते हैं। इनकी रचना लगभग 800 ई॰ पू॰ प्रारंभ होता है। पहले सूत्रा ग्रन्थ वेदांग संबंधे थे जिनमें कल्प, शिक्षा, व्याकारण, निरुक्त, छंद एवं ज्योतिष छह विषय थे। इनका उद्देश्य धर्मिक ग्रन्थों की व्याख्या, रक्षा और इन्हें व्यवहारिक रूप से ग्राह्य बनाना था।[6]

वैदिक सूक्तों का विस्मयकारी पक्ष उनका बहुदेववादी स्वरूप है। अनेक देवताओं के नाम व उनकी पूजा विध्ि मिलता है।)ग्वेद के सूक्तों द्वारा प्रतिपादित धर्म के जो तीन स्तर स्पष्ट रूप से दिखाई देने हैं वे इस प्रकार हैः– प्राकृतिक बहुदेववाद, एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद।[7]

यास्क के निरूक्त में देवताओं की संख्या मात्रा तीन बनायी गयी है–पृथ्वी में अग्नि, अन्तरिक्ष में इन्द्र या वायु तथा आकशा में सूर्य। ये तीन देवता तीनों लोको का स्वामी थी।)ग्वेद में एक अन्य स्थान पर प्रत्येक लोक में ग्यारह देवताओं का निवास मानकर इनकी संख्या तैंतोस कही गयी है। आर्यों के प्रधन देवता प्राकृति शक्तियों के प्रतिनिधि है, जिनका मानवीयकरण किया गया है।)ग्वैदिक देवताओं का वर्गीकरण निम्नांकित तीन भागों में किया गया है–

1. पृथ्वी के देवता–पृथ्वी, अग्नि, सोम, वृहस्पति, अपांनपात्, मातरिश्वत्, तथा नदियों के देवता आदि।
2. अंतरिक्ष के देवता–इन्द्र, रुद्र, वायु–वात, पर्जन्य, आपः, यम, प्रजापति, अदिति आदि।
3. द्युस्थान ;आकाशद्ध के देवता –द्यौस, वरुण, मित्रा, सूर्य, सवितृ, पूषन, विष्णु, आदित्य, उषा, आश्विन आदि।

इसके अतिरिक्त कुछ अमूर्त्त भावनाओं के द्योतक देवता भी हैं, जैसे–श्र(ा, मन्यु, धातृ, विधतृ आदि।[8]

ऋगवेद में कहा गया है कि एक हो देवता के लोग भिन्न–भिन्न नामों से जानते हैं– 'ऐको सद् विप्रा बहुध वदन्ति।[9])ग्वैदिक देवता मंडल में पुरुष देवताओं की बुलता है। सिन्धु नदी को देवी के रूप में मान्यता दी गयी है। जंगल की देवी 'अरण्यानी' कहा गया है। 'वाग्देवी', 'सरस्वती' को भी स्तुति की गयी ह। समस्तदेव समूह में 'इन्द्र' 'वरुण' और 'अग्नि' का सर्वाध्कि महत्वपूर्ण स्थान है।

वेद में तीन चीजें महत्वपूर्ण है, जिससे वैद एवे उसके अर्थ को समझ सकते हैं–)षि, देवता, छंद।

ऋषि– यहाँ **ऋ**षि का अभिप्राय है– कहने वाले ;यस्य वाक्यं स **ऋ**षिःद्ध का व्यक्तित्व।

देवता –यहाँ देवता का अभिप्राय है–प्रकृति की किस शक्तिधरा को लक्ष्य करके बात कही गयी है ;या तेनोच्यते सा देवताद्ध

छंद– यहाँ छंद का अभिप्राय है– इसमें काव्यात्मकता किस शैली की है ;यद् अक्षरपरिमाणं तच्छन्दःद्ध।

उपर्युक्त वर्णित शब्दों से स्पष्ट है कि)ग्वैदिक काल में ध्र्म संबंधी चिन्तन धरा उन्नत स्थिति को प्राप्त करने की ओर अग्रसरित था।

)ग्वेद में अदिति, उषा, सरस्वती आदि के रूप में वेदों में अनेक देवियों का उल्लेख है और उनके स्तवन में भी अनेक मंत्रों का निर्माण किया गया है।

उदाहरणार्थ

नत्तफोषासा सुपेशसास्मिन् यज्ञ उप ह्वये। इद नो बर्हिरासदे ।।7।।

ऋग्वेद सूक्त 13 मंडल 1

अर्थात् सुन्दर रुपवती रात्रि और उषा का हम इस यज्ञ में आवाह्न करते हैं हमारी ओर से असान रूप में यह बर्हि ;कुशद्ध प्रस्तुत है।

इळा सरस्वती यही तिस्त्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ।।9।।

ऋग्वेद सूक्त 13 मंडल 1

अर्थात् इळा, सरस्वती और मही य तीनों देवियाँ सुखकारी और क्षयरहित हैं। ये तीनों बिछे हुए दीप्तिमान् कुश के आसनों पर विचाजमान हों। **ऋ**ग्वैदिक काल में विविध देवताओं की पूजा के लिए वैदिक आर्य अनेकविध यज्ञों का अनुष्ठान करते थे। यज्ञकुण्ड में अग्नि का आधन कर दूध, घी, अन्न, सोम आदि सामग्री की आहुति दी जाती थी। यह समझा जाता था, कि अग्नि में दी हुई आहुति देवताओं तक पहुँच जाती है और अग्नि इस आहुति के लिए वहन का कार्य करती है।)ग्वेद के प्रथम मंडल के बारहवें सूक्त के आठवें छंद में अग्नि की आवाहन करते हुए निम्न मंत्रा आया है– ''यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति। तस्य स्म प्राविता भव ।।8।। मं॰ 1 सूक्त 12

अर्थात् देवगणों तक हविष्यान्न पहुँचाने वाले हे अग्निदेव। जो याजक, आप ;देवदूतद्ध की उत्तम विधि से अर्चना करते हैं, आप उनकी भली–भाँति रक्षा करें।

वैदिक युग में यज्ञा में मांस की आहुति दी जाती थी या नहीं, इस संबंध में मतभेद है।[11] परन्तु इस संबंध में पं॰ श्रीराम शर्मा आचार्य ने '')ग्वेद संहिता'' के भूमिका में स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि यज्ञ अहिंसक होता था। उन्होंने लिखा है कि ''वेद एवं यज्ञ का संबंध अन्योन्याश्रित है। यज्ञ का कर्मकांड पक्ष ही लें, तो भी देव पूजन के क्रम में)ग्वेद के मंत्रों की स्तुतियाँ करने, यजुर्वेद के मंत्रों से यजन प्रयोग करने, सामगान द्वारा यज्ञीय उल्लास को संवर्धित और प्रसारित करने तथा अथर्ववेद से स्थूल–सूक्ष्म परिष्कार की वैज्ञानिक प्रक्रिया चलाने की मान्यता सर्वविदित है। यदि यज्ञ का विराट् रूप लें, तो पुरुष सूक्त के अनुसार उस विराट् यज्ञ द्वारा ही सृष्टि का निर्माण हुआ तथा उसी से उसके पोषण का चक्र चल रहा है। उसी विराट् यज्ञिरे प्रक्रिया के अंतर्गत सृष्टि के संचालन एवं पोषण के लिए उत्कृष्ट ज्ञान–वेद का प्रकटीकरण हुआ। यथा– ततो विराळजायत विराजो अध्पिुरुषः। सजातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथोपुरः। ;)॰ 10.90.5द्ध अर्थात् उस विराट पुरुष से वह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। उसी से समस्त जीव प्रकट हुए। देह–धरियों के रूप में श्रेष्ठ पुरुष स्थित है। उसने पहले पृथ्वी और पिफर प्राणियों को उत्पन्न किया। ''तस्मात् यज्ञातर्स्वहुत {}चः सामानि जाज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तमादजायता'' ;)॰ 10.10.9द्ध अर्थात् उस विराट यज्ञ पुरुष से)ग एवं साम का प्रकटीकरण हुआ। उसी से छन्द की और यजु एवं अथर्व की उत्पत्ति हुई।

वेद यज्ञीय प्रक्रिया से प्रकट हुए है और यज्ञीय अनुशासन में जीवन को गतिशील बनाने के लिए हैं। वेद मंत्रा परा–चेतन और प्रकृतिगत गूढ़ अनुशासनों– रहस्यों का बोध कराते हैं। उन्हें समझकर ही प्रकृतिगत चेतन प्रवाहों तथा स्थूल–पदार्थों का प्रगतिशील एवं कल्याणकारी प्रयोग किया जाना संभव है।''

आगे वे मेध एवं बलि का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि अक्सर लोग '**मेध**' का अर्थ 'हिंसा' करने का प्रयास करते हैं, किन्तु स्मरणीय है कि निघण्टु में यज्ञ का नाम ''अध्वर'' ;हिंसा रहित कर्मद्ध भी है। अस्तु हिंसा रहित कर्म में मेध का अर्थ हिंसापरक करना अनुचित है। 'मेध' का व्याकरणपरक अर्थ होता है– ;मेध हिंसनयो : संगमे चद्ध मेध संवर्ध्न, हिंसा एवं एकीकरण–संगतिकरण। अध्वर के नाते हिंसापरक अर्थ अमान्य कर देने पर मेध संवर्ध्न तथा एकीकरण –संगतिकरण ही मान्य रह जाता है, जो यज्ञ एवं वेद की गरिमा के अनुरूप है।

बलि शब्द बल् –इन् से बना है, जिसके कई अर्थ होते हैं, जैसे ;1द्ध आहुति, भेंट, चढ़ावा, ;2द्ध भोज्य पदार्थ अर्पित करना। सद्गृहस्थ के नित्यकर्मी में बलिवैश्चदेव यज्ञ का विधान है। उसके अन्तर्गत भोज्य पदार्थों को यथार्थ अर्पित किया जाता है, किसी प्रकार की हिंसा की प्रक्रिया प्रचलित नहीं है। श्रा(कर्म में गोबलि, कुक्कुर बलि, काक बलि, पीपीलिकादि बलि का विधन है। उसके अन्तर्गत संबंध्ति प्राणियों का वध नहीं किया जाता, उनके लिए भोज्य पदार्थ ही भेंट किया जाता है।[12] क

याज्ञिक कर्मकांड के अतिरिक्त स्तृति और प्रार्थना भी देवताओं की पूजा के महत्वपूर्ण साध्न थे। वेदों में बहुत से सूक्तों की देवताओं की स्तुति की गयी है। इन स्तुतियों में देवताओं के विशद्रूप की चर्चाकी गयी है। इस प्रकार के मंत्रों द्वारा देवताओं के गुणों का ध्यान कर मनुष्य उन गुणों की अपने में धरण व विकसित करने की आशा रखते थे और देव पूजा की यह भी विध्ि थी।[13]

देवमंडलों को बाद में अचार्य देवताओं को भो शामिल कर लिया गया। इसमें आय–अनार्य पूजा विध्ि संयुक्त हो गया। वैदिक ध्र्म का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष 'तत्व–चिन्तन' है। उस समय देवताओं के रूप में आर्य प्रकृति की विविध् शक्तियों की पूजा करते थे और यह विचार उनमें भली–भांति विद्यमान था कि ये सब देवता एक ही सत्ता की विविध् अभिव्यक्तियाँ हैं वैदिक आर्य केवल देवताओं की पूजा और याज्ञिक अनुष्ठान में ही तत्पर नहीं थे, जिसने आगे चलकर उपनिषदों और दर्शन शास्त्रों को जन्म दिया। यह सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई, सृष्टि से पहले क्या दशा थी, जब सृष्टि नहीं रहेगी तो क्या अवस्था होगी, इस प्रकारा के प्रश्नों पर भी वैदिक युग में विचार किया जाता था।

वैदिक युग में देवता प्राकृतिक शक्तियों के रूप में थे, अतः उनकी मूर्ति बनाने व इन मूर्तियों की पूजा करने की प(ति संभवतः वैदिक युग में विद्यमान नहीं थी।

उत्तर वैदिक काल में यज्ञीय प्रक्रिया जटिल होने लगी। कर्मकांडों में विभिन्न विषयों का समावेश हो गया। ब्राह्मण ग्रन्थों में यों को विध्ि जटिल से जटिल दर्शाया गया है। यज्ञ के लिए वेदी की रचना किस प्रकार की जाये, वेदी में अग्नि कैसे प्रज्वलित हो, यजमान कहाँ बैठें आदि का समावेश हो गया। यज्ञों के विभिन्न प्रकार बना दिये गये। प्रत्येक आर्य गृहस्थ के लिए पाँच महायज्ञों का अनुष्ठान आवश्यक था–

1. **देव यज्ञः** प्रातः और सायं, दोनों कालों में विध्िपूर्वक अग्न्याधन करके जो हवन किया जाए, उसे 'देवयज्ञ' कहते थे।
2. **पितृयज्ञः** पितरों और पूजनीय व्यक्तियों के तर्पण व सम्मान
3. **नृयज्ञः** अतिथियों की सेवा व सत्कार
4. **ऋषियज्ञ या ब्रह्म यज्ञ** – प्राचीन)षियों द्वारा प्रतिपादित मन्तव्यों एवं तथ्यों को नियमपूर्वक अनुशीलन तथा उनके ग्रन्थों के स्वाध्याय को)षियज्ञ का नाम दिया गया
5. **भूतयज्ञ**–विविध् प्राणियों को बलि प्रदान कर संतुष्ट रखना।

उपर्युक्त यज्ञों के अतिरिक्त विशिष्ट लोगों के लिए भी यज्ञों का आयोजन होता था–

1. **अग्निष्टोम यज्ञ** – पाँच दिन चलता था।
2. **चातुर्मास्य यज्ञ**– चार महीने चलता था।
3. **राजसूय यज्ञ**– जब किसी व्यक्ति को राजापद पर प्रतिष्ठित किया जाता था तो उसे राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान आवश्यक होता था। राजसूय यज्ञ किये बिना कोई व्यक्ति राजा नहीं न सकता था।
4. **अश्वमेघ यज्ञ**–चक्रवर्ती राजा के लिए।

उत्तर–वैदिक काल में सोलह–संस्कारों का महत्व भी बढ़ गया। इसके अलावा तत्व चिन्तन भी अपने चरम सीमा पर पहुँच गया।

निष्कर्षः

वैदिक कालीन ध्र्म का आधर यज्ञ एवं चिन्तन धरा है, जो मनुष्य को एक अनुशासन में रखते हुए गतिशील बनाने का प्रयास करता है। वैदिक ध्र्म में रूपक एवं प्रतीकों का प्रयोग अध्कि मिलता है। 'वेद' ध्र्म का मूल आधर है। वैदिक ध्र्म की मूल मान्यता है। वेदों में

प्रकति एवं पुरुष को जोड़ने के लिए 'यज्ञ' को प्रतिष्ठित किया गया है। सभी प्राणियों में समानता है, ऐसी भावना को बताने का प्रयास किया गया है परन्तु उत्तरवैदिक काल में धर्म का स्वरूप जटिल हो गया था।

संदर्भ –सूची :

1. रामशरण शर्मा– प्रारंभिक भारत का आर्थिक व सामाजिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 28
2. रामशरण शर्मा, पूर्वोक्त, पृ॰ 29
3. एस॰ राधकृष्णन– भारतीय दर्शन, राजपाल, पृ॰ 51
4. एस॰ राधकृष्णन– पूर्वोक्त, पृ॰ 51
5. एस॰ राधकृष्णन– पूर्वोक्त, पृ॰ 52
6. आनंद सिंह– भारतीय धर्म, उद्भव एवं स्वरूप, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ॰ 15
7. एस॰ राधकृष्णन– पूर्वोक्त, पृ॰ 56
8. के॰ सी॰ श्रीवास्तव– प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2007, पृ॰ 92
9. सहाय–प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001, पनमुर्द्रण 2014, पृ॰ 2
10. पं॰ रामशर्मा आचार्य–)ग्वेद
11. सत्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारत का धर्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन बनारसीदास, दिल्ली, पृ॰ 24
12. पं॰ रामशर्मा आचार्य, पूर्वोक्त, पृ॰ 14
13. सत्यकेतु विद्यालंकार, पूर्वोक्त